

आधुनिक हिंदी कविता में प्रकृति-चित्रण

भारती कुमारी
शोधार्थी

अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद
ईमेल kbharti21@gmail.com

मानव सभ्यता के विकास को मनुष्य और प्रकृति के बदलते रिश्तों के रूप में देखा जा सकता है। सभ्यता की शुरुआत में मनुष्य और प्रकृति का संबंध नैसर्गिक था। मनुष्य स्वयं को प्रकृति से अलग नहीं मानता था। 'ऋग्वेद' तक आते-आते उसने प्रकृति को ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया था, जो उसके जीवन की निर्धारक थी। यही कारण है कि सभी ऋग्वैदिक देवता प्राकृतिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अज्ञेय कहते हैं 'वैदिक कवि प्रकृति को न सत मानता है न असत, इसलिए प्रकृति के प्रति उसका भाव न प्रेम का है न विरोध का'। वह मूलतः एक विस्मयभाव है। संस्कृत काव्य में कवियों के लिए प्रकृति शोभा रम्य और स्फूर्तिदायक करने वाली थी। अतः वह मनुष्य की सहचरी हो गयी। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि काव्यशास्त्रियों ने वर्ण्य विषय को दो भागों में विभाजित किया है अर्थात् आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव के रूप में था।

इस दृष्टि से कह सकते हैं कि प्रकृति स्वतंत्र रूप से हमारे भावों का विषय आधुनिक काल में ही आकर बनी है। श्रीधर पाठक की 'कश्मीर सुषमा' और उसके बाद छायावादी काव्य ने प्रकृति को ही स्वतंत्र रूप से वर्ण्य विषय स्वीकार किया। इस बात का संकेत करते हुए नामवर जी लिखते हैं "छायावाद युग ने प्रकृति को इतना महत्त्व दिया कि किसी अपरिचित और नन्हें से फूल को भी स्वतंत्र रूप से कविता का विषय बनाया। अकेली एक ओस की बूंद पर भी पूरी की पूरी कविता लिखी जा सकती थी, जिसमें और किसी चीज का दखल न हो।"¹

वस्तुतः किसी भी रोमैंटिक काव्य के लिए प्रकृति एक आधारभूत उपजीव्य रही है। यूरोप को रोमैंटिक काव्य के मूल में, जिसे वहाँ हो रहे तीव्र औद्योगिकीकरण की प्रतिक्रिया माना जाता है, रूसो का प्रसिद्ध वाक्य "प्रकृति की ओर लौटो" (back to nature) ही था। फ्रांस में विक्टर ह्यूगो, जर्मनी का प्रसिद्ध कवि गेटे और अंग्रेजी का कवि वड्सवर्थ इसके प्रतिनिधि थे। वड्सवर्थ को तो 'प्रकृति के कवि' के रूप में प्रतिष्ठा मिली। प्रकृति की यही प्रधानता हिंदी में 'छायावाद' में देखने को मिलती है। पर छायावाद को यूरोप के (खासकर अंग्रेजी) रोमैंटिक आंदोलनों की तरह औद्योगिक और यांत्रिकीकरण की प्रतिक्रिया में उत्पन्न काव्यधारा नहीं माना

जा सकता। भारत में उस समय औद्योगीकरण अपनी प्रारंभिक अवस्था में था। इसलिए नामवर सिंह लिखते हैं “छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर झुकना, प्रकृति को महत्त्व देना, प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को काव्य में प्रतिष्ठित करना और प्रकृति के सौन्दर्य को उद्धाटित करना। यह सब आधुनिक विज्ञान का परिणाम है। विज्ञान ने प्रकृति के रहस्यों को जानने की चेष्टा की।”² वे आगे कहते हैं कि यदि “वाल्मीकि-कालिदास का प्रकृति काव्य पर आरम्भिक विजय का परिणाम है तो छायावादी कवियों का प्रकृति चित्रण आधुनिक विजय का।”³ अतः छायावाद में प्रकृति-चित्रण प्रकृति के रहस्यों के प्रति उपजी जिज्ञासा का परिणाम था न कि किसी यांत्रिकीकरण से उपजे अलगाव का।

हिंदी कविता में छायावाद ने यहाँ प्रकृति के भव्य और विस्मयकारी रूपों का ही चित्रण किया, वहीं भाषा के स्तर पर लोक की ओर न जाकर वह लाक्षणिक प्रतीकात्मक और अधिकांशतः तत्सम प्रधान ही बनी रही। प्रगतिवादी कविता इस अर्थ में छायावादी कविता से बिल्कुल भिन्न रुख अपनाती है। उसने न केवल भाषा के स्तर पर अपने को लोक से जोड़ा बल्कि और शायद इसी कारण उसमें उपस्थित प्रकृति भी लोकजीवन की प्रकृति है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बुंदेलखंड की प्रकृति के चित्र देखा जा सकता है- “हवा हूँ हवा मैं बसंती हवा हूँ / चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया / गिरी धम्म से फिर, चढो आम ऊपर / उसे भी झकोड़ा किया कान में कू”⁴

प्रयोगवाद से हिंदी कविता में आधुनिक भावबोध का प्रवेश होता है। अज्ञेय अपनी कवि-प्रकृति के अनुरूप प्रकृति के बिम्ब चुन-चुन कर लाते हैं। अपनी नायिका की तुलना वे कुछ इस तरह करते हैं- “बिछली घास हो तुम / या शरद के साँझ की”⁵ इसी समय अज्ञेय यह स्थापना भी करते हैं, “प्रवृत्तियों को सामने रखकर एक अर्थ में कहा जा सकता है कि प्रकृति काव्य वास्तव में है ही नहीं। एक विशिष्ट अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि छायावाद का काव्य प्रकृति काव्य था। यदि छायावादी काव्य मर गया था तो उसके साथ ही प्रकृति काव्य की भी अंत्येष्टि हो गई”। वस्तुतः अज्ञेय का मानना था कि प्रकृति अब ‘देखने की चीज’ है ‘जीने की नहीं’। ‘देखने’ और ‘जीने’ में फर्क के कारण अब उस अर्थ में प्रकृति काव्य संभव नहीं है।

किन्तु प्रगतिवादी धारा की कविता और आगे की समकालीन कविता में आयी प्रकृति की इस स्थापना से मेल नहीं बैठता। प्रकृति को परिवेश और जीवन से जोड़कर काव्य में लाने का जो प्रयास नागार्जुन ने प्रारम्भ किया

था, वह समकालीन कविता में फलीभूत होता दिखाई देता है। इस दृष्टि से नागार्जुन की कविता, “कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास / कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास / कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त / कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त / दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद / धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद / चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद / कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद”।⁶

इस कविता में प्रकृति अर्थात् ‘कानी कुतिया’, ‘छिपकली’, ‘चूहे’, ‘कौए के पंखों का खुजलाना’ आदि को क्या मानव निर्मिति अर्थात् चूल्हा और चक्की से अलग नहीं किया जा सकता है। ‘चमक उठी घर भर की आँखें’ पंक्ति प्रकृति और मानव निर्मित परिवेश से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

नागार्जुन की कविता “अकाल और उसके बाद” समकालीन कविता में प्रकृति व्यवहार को समझने की एक भूमिका है। समकालीन कविता में प्रकृति अपने परिवेश और जीवन से घुलमिलकर ही आती है। मसलन राजेश जोशी की कविता ‘पानी की आवाज’ को देखा जा सकता है। कविता प्रारम्भ होती है, “पानी का ही जादू था / कि पानी की आवाज भी पारदर्शी और तरल लगती थी / बहकर समुद्र की तरफ जाती आवाजों में / पहाड़ से उतरकर आने की आवाजें भी शामिल थीं”⁷

यहाँ के बाद ‘पानी की आवाज’ को अभिव्यंजित कर रही कविता कैसे जीवन में प्रवेश करती है, यह द्रष्टव्य है, “माँ की आवाज उसमें बार-बार सुनाई देती थी / वह आवाज अक्सर हमें घर के भीतर बुलाती थी।”⁸ यहाँ पानी की आवाज माँ की आवाज में बदल जाती है या दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता। परिवेश में प्रकृति और माँ दोनों शामिल है। और कविता का अंत कुछ इस प्रकार है, “रात जब नींद से भारी होने लगती थीं आँखें / कहीं दूर से बुलाती थी हमें पानी की आवाज / फिर धीरे-धीरे / हमारे सपनों में शामिल हो जाती थी / पानी की आवाज”।⁹

इस लिहाज से भारतीय सन्दर्भ में समकालीन कविता भौतिक आधार से प्रकृति की ओर मुड़ने की कविता मानी जा सकती है। यहाँ यह देखना भी महत्वपूर्ण होगा कि अशोक वाजपेयी ने जब नक्सलबाड़ी की कविता के बाद ‘कविता की वापसी’ जैसा पद प्रस्तावित किया तो उसका इशारा भी कविता में प्रकृति और प्रेम की ओर ही था। इससे यह मतलब बिलकुल नहीं निकलना चाहिए कि हम समकालीन कविता को एक रोमेंटिक

कविता के रूप में प्रस्तावित कर रहे हैं। दोनों बिल्कुल भिन्न तरह की कविताएँ हैं। इसलिए इन दोनों का प्रकृति के प्रति नजरिया भी बिल्कुल भिन्न है।

‘नेहरू युग’ के अंत के बाद ‘विकास के माडल’ से देश की जनता का मोहभंग हुआ था। आर्थिक विकास के नाम पर गाँवों का उजाड़ा जाना, अनियमित शहरीकरण और उनके परिणाम स्वरूप 1980 के दशक में उपजने वाला विरोध आन्दोलन इसका साक्ष्य हैं। 1990 के बाद भूमंडलीकरण के आवेग ने भारतीय चेतना को और हतप्रभ किया था। भूमंडलीकरण को इसी परिप्रेक्ष्य में देखते हुए एजाज अहमद लिखते हैं कि “भूमंडलीकरण की तकनीकें अति आक्रामक हैं और जिस तरह से वे हमारे घरों में घुसी हैं, उपनिवेशवाद कभी नहीं घुसा। आर्थिक विकास के पूंजीवादी माडल और उसके बाद भूमंडलीकरण के इस आवेग ने समकालीन कविता को तेजी से अपने परिवेश और प्रवृत्ति की ओर मोड़ा है।

किन्तु इसी बिंदु पर अंग्रेजी के रोमैंटिक काव्यान्दोलन से यह कविता तत्त्वतः भिन्न है। अंग्रेजी कविता जिस खास ऐतिहासिक समय में रोमैंटिक काव्यान्दोलन की ओर मुड़ी थी, वह समय उनकी तीव्र समृद्धि और उनके द्वारा संसार की व्यापक लूट का समय था। उस खास ऐतिहासिक काल की कविता प्रवृत्ति के प्रति भावोच्छ्वास चाहे जितना व्यक्त करे लेकिन उस औद्योगिक से इंग्लैंड की बढ़ रही समृद्धता इससे कुछ भिन्न करती है। खास अर्थ में वह रोमैंटिक कविता है।

हिंदी में समकालीन कविता का सन्दर्भ न सिर्फ इससे भिन्न है बल्कि विपरीत भी है। अंग्रेजों ने लम्बे समय तक भारत को प्रत्यक्षतः अपने अधीन कर उसे अपना ‘बाजार’ बनाए रखा। आजादी के बाद पूंजीवादी व्यवस्था इसी ‘बाजार’ की पोषक थी और भूमंडलीकरण आने के बाद यह कोशिश और तेज हो गई है। कुल मिलाकर भारत की बहुसंख्यक आबादी साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए एक ‘बाजार’ ही रही है, जिसका वे अनंत शोषण कर सकते हैं। समकालीन कविता न सिर्फ इस स्थिति को वैचारिक रूप से समझती है बल्कि रचनात्मक दृष्टि से इसके विरुद्ध खड़े होने के लिए प्रतिबद्ध भी है। इसलिए जब एक समकालीन कवि प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता है तो रोमैंटिक भावोच्छ्वास के तहत नहीं बल्कि भूमंडलीकरण के इस तूफान से ‘अपनी दुनिया’ को बचाने के लिए ही। इसतरह यह कविता रोमैंटिक कविता से तात्त्विक रूप से भिन्न हो जाती है। दूसरों को लूट कर समृद्ध हो रहे देश और सदियों से निर्ममतापूर्वक लूटे जा रहे एक देश की प्रतिक्रिया समान नहीं हो सकती। हिंदी की

समकालीन कविता में प्रकृति ज्यादा परिवेशगत रूप में आयी है तो इसका कारण यही है। जब केदारनाथ सिंह कहते हैं कि 'बचाना' समकालीन कविता का लगभग बीज शब्द बन गया तो उसे इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है।

कहा जाता है कि एक अच्छी कविता में कई स्वर होते हैं। इस तरह अरुण कमल की 'मातृभूमि' कविता में भी कई स्वर हैं- माँ का प्यार, गरीबों के प्रति आत्मीय लगाव और प्रकृति चित्रण आदि। अपनी मातृभूमि से प्रेम को हर समर्थ कवि महसूस करता है और वह प्रेम उसकी नसों के रुधिर में बहता है। उसका भावाकुल हृदय मातृभूमि के कष्टों और वेदनाओं को अनदेखा नहीं कर पाता है। इसीलिए जनभूमि और मातृभूमि के कष्टों को बढ़ाने वाले आततायी शासकों से उसका टकराव अनिवार्य हो जाता है। उन्होंने इस कविता को बहुत ही जीवंत रूप में खींचा है, 'ये यतीम ये अनाथ ये बंधुआ / इनके माथे पर हाथ फेर दो माँ / इनके भीगे केश सँवार दो अपने श्यामल हाथों से- / तुम किसकी माँ हो मेरी मातृभूमि ? / मेरे थके माथे पर हाथ फेरती तुम्हीं तो हो मुझे प्यार से तकती / और मैं भीज रहा हूँ / नाच रही धरती नाचता आसमान मेरी कील पर नाचता नाचता / मैं खड़ा भीजता बीचों बीच'।¹⁰

माँ के रूप में देश की कल्पना आधुनिक साहित्य में बहुत आयी है। प्रायः तो देश को भारतमाता या विदेशी उत्पीड़न का शिकार दुःखी स्त्री के रूप में उसका चित्र खींचा जाता है। देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने के भाव के महिमामंडन के लिए देश और नागरिक के संबंधों को माँ-पुत्र के संबंधों के रूप में दिखाया जाता है।

लेकिन अरुण जी की कविता में माँ-पुत्र संबंध को नाटकीय रूप में प्रदर्शित किया गया है। माँ के हाथों में खूबानियाँ, अखरोट, मखाने, काजू और गर्म दूध का गिलास नजर आने लगता है जिसका इंतजार कालाहांडी तथा आंध्रप्रदेश के किसानों के बच्चों कर रहे हैं। इस कविता में प्रकृति व्यवहार के साथ-साथ अरुण जी सामाजिक स्थितियों को भी दिखाते हैं। इन चीजों के जरिए अरुण जी देश की दरिद्रता, भूख और गरीबी की ही प्रामाणिक छवियाँ दिखलाते हैं। इस कविता में पीड़ित जनता के दुःख-दर्द का चित्र खींचा गया है। उनके शब्द हैं- 'आज जब भीख में मुट्टी भर अनाज भी दुर्लभ है'। तो अरुण जी यह पूछते बिल्कुल भी नहीं हिचकते कि 'आखिर माँ के रहते बच्चे बेसहारा क्यों हैं?'

समकालीन कविता के अंतर्गत प्रकृति से जुड़ी कविताएँ बड़ी संख्या में देखी जाती हैं। संभवतः यही कारण है कि कभी-कभी इसे 'फूल-पत्ती-चिड़िया' की कविता भी कहा जाता है। आलोकधन्वा की कविताओं में

भी प्रकृति अपने परिवेशमयी सौन्दर्य के साथ उपस्थित होती है। इस परिवेश में जीवन समाहित है। इनकी पगडंडी कविता की पंक्ति है- “वहाँ घने पेड़ हैं / उनमें पगडंडियाँ जाती हैं / जरा आगे ढलान शुरू होती है / जो उतरती है नदी के किनारे तक / वहाँ स्त्रियाँ हैं / घास काटती जाती हैं / आपस में बातें करते हुए / घने पेड़ों के बीच से ही उनकी / बातचीत सुनाई पड़ने लगती है”।¹¹

आलोकधन्वा इस कविता में प्रकृति का वर्णन करते हुए जीवन में प्रवेश करता है। कविता एक ‘मानवीय गतिविधि’ का संकेत करती हुई समाप्त हो जाती है। पाठक को जिज्ञासु मनस्थिति में छोड़ जाती है कि वह बातचीत क्या होगी? समकालीन कविता की कोशिश रही है कि वह कम-से-कम शब्दों में ज्यादा बात कह सके। यहाँ भी कविता में प्रकृति और परिवेश मिला-जुला दिखाई देता है।

समाप्ततः कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी कविता में प्रकृति व्यवहार मुख्यतः परिवेश गत रूप में उभर कर आती है।

¹ नामवर सिंह, छायावाद, 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 40

² वही, पृ. 37-38

³ वही, पृ. 38

⁴ https://kaavyaalaya.org/basanti_hawa

⁵ http://kavitakosh.org/kk/कलगी_बाजरे_की_/अज्ञेय

⁶ नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, 2009, राजकमल प्रकाशन, पृ. 98

⁷ राजेश जोशी, प्रतिनिधि कविताएँ, 2013, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 96

⁸ वही, पृ. 96

⁹ वही पृ. 96-97

¹⁰ अरुण कमल, पुतली में संसार, 2006, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 44

¹¹ <http://kavitakosh.org/पगडंडी-/-आलोक-धन्वा>